जनतंत्रीय शिक्षा में शिक्षकों की भूमिका

राजेश कुमार श्रीवास्तव*

जनतंत्रात्मक दर्शन की सफलता का दायित्व अध्यापक के ऊपर भी कुछ-कुछ अवश्य है। बालकों में जनतंत्र के प्रति आस्था अथवा अविश्वास, आदर अथवा अनादर की भावना उत्पन्न करने का श्रेय अध्यापक को है। जनतंत्रीय शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक को महत्वपूर्ण माना जाता है। उसे एक अच्छे नेता के रूप में स्वीकार किया जाता है जो छात्रों की सामूहिक चर्चा का नेतृत्व करता है, सामाजिक अनुभवों का पथ-प्रदर्शन करता है और छात्रों को नेतृत्व का प्रशिक्षण देता है। ऐसा वह तभी कर सकता है जब वह स्वयं जनतंत्र में विश्वास रखे और व्यक्तित्व की गरिमा, स्वतंत्रता, समानता आदि का आदर करे।

किसी भी युग में संस्थाओं का संगठन उस युग के समय और प्रचलित सामाजिक विश्वासों के अनुरूप होना चाहिए। एक निरंकुशतावादी राज्य में सभी संस्थाएँ निरंकुशतावादी आदर्शों की पूर्ति का लक्ष्य रखेंगी, लेकिन प्रजातंत्रात्मक राज्य में उनका संगठन इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि वे जनतंत्रीय में सभी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक तथा अन्य संस्थाएँ जनतंत्रीय बिन्दुओं के यआधार पर संगठित की जानी चाहिए। यदि संस्थात्मक संगठन जनतंत्रीय आदर्शों के विपरीत चलता है तो समाज में अत्यधिक मतभेद और संदेह उत्पन्न होगा। आने वाली पीढ़ियों को अपने विश्वासों, आदर्शों तथा आशाओं को हस्तांतरित करने के लिए, स्वयं को उत्साह तथा उर्जा देने के लिए तथा अपनी निरंतरता को कायम रखने के लिए समाज विभिन्न प्रकार की संस्थाओं की स्थापना करता है तथा उन्हें बनाये भी रखता है। ये संस्थाएँ उस समाज को जीवित रहने के लिए खून और मांस प्रदान करती हैं। जब तक ये विभिन्न संस्थाएँ समाज के आदर्शों से मेल नहीं खातीं और उन माँगों की पूर्ति नहीं करतीं जो समाज समय-समय पर उठाता है, वे समाज का कल्याण करने में असफल हो जाती हैं, परिणामस्वरूप उनका समाज में बने रहने का कोई औचित्य नहीं रह जाता है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संविधान निर्माताओं ने हमारे देश में प्रजातांत्रिक सरकार की स्थापना की। यह सर्वथा उचित ही है कि प्रजातंत्र के स्वतंत्र नागरिक के रूप में हमारे देश के लोगों को प्रजातंत्र की महत्ता तथा माँगों को जिन्हें कि यह (प्रजातंत्र) व्यक्तियों तथा समाज पर प्रत्यारोपित करता है, समझना चाहिए। प्रजातंत्र के आदर्शों को

* *प्रवक्ता (बी.एड.संकाय)* श्री वंशी बाल गोपाल महाविद्यालय सगरा-राजूपुर, पोस्ट-सम्मनपुर जिला-गाजीपुर, उत्तर प्रदेश

विकसित तथा मज़बूत करने के लिए शिक्षा को अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है। शिक्षा प्रजातंत्र का हथियार है और एक प्रजातांत्रिक ढ़ाँचा तभी खड़ा रह सकता है जब यह प्रबुद्ध और शिक्षित नागरिकों के द्वारा समर्थित होगा। यह परिकल्पना देश के युवा वर्ग के लिए एक स्वस्थ, जनतांत्रिक शिक्षा के कार्यक्रम की आवश्यकता उत्पन्न कर देती है जिससे कि उन्हें जनतंत्र का कुशल और सक्षम नागरिक बनाया जा सके।

प्रजातंत्र में शिक्षा केवल बच्चों को किताबी ज्ञान देने से ही संबंधित नहीं है अपितु यह मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण- शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक-विकास से संबंधित है। इन आदर्शों की पूर्ति के लिए प्रजातंत्र में शिक्षा को इस तरह से संगठित किया जाना चाहिए कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्णतम विकास कर सके और साथ-ही-साथ उन नैतिकताओं, गुणों और दृष्टिकोणों को प्राप्त कर सके जो उसे प्रजातांत्रिक समाज का एक उपयोगी सदस्य बना सके। प्रजातंत्र की स्थिरता केवल योग्य व्यक्तियों से हो सकती है और इसकी निरंतरता की गारंटी समाज के सभी सदस्यों के सामूहिक योगदान के द्वारा दी जा सकती है। यह हमेशा याद रखना चाहिए कि प्रजातंत्र केवल शासन का ही एक रूप नहीं है वरन् यह जीवन का एक तरीका है। यह एक सामाजिक विश्वास है जिसे मानव जाति ने हज़ारों वर्षों के अथक परिश्रम के बाद हासिल किया है। यह केवल शासन का एक रूप ही नहीं है, यह समाज की एक व्यवस्था भी है और साथ-साथ जीने का एक ढंग भी। जहाँ कहीं भी प्रजातंत्र असफल रहा है, इसलिए कि लोगों ने इसे केवल मतों, चुनावों और संसदों तक ही सीमित रखा। यह कभी भी समाज के अंतर्तम तक नहीं पहुँचा और कभी भी साथ-साथ जीने के सिद्धांत के रूप में स्वीकार नहीं किया गया। जब तक प्रजातंत्र सभी मानवीय संबंधों का आलिंगन नहीं करता, जब तक समाज का प्रत्येक व्यक्ति प्रजातांत्रिक तरीके से सोच, समझ और कार्य नहीं कर सकता, तब तक प्रजातंत्र की सफलता की कामना करना मात्र दिवास्वप्न होगा।

प्रजातंत्र–अर्थ और महत्व

अगर हम अब्राहम लिंकन के प्रसिद्ध वाक्य का प्रयोग करें तो, 'प्रजातंत्र लोगों की, लोगों के द्वारा, लोगों के लिए चुनी गयी सरकार है। इस परिभाषा से व्यापक प्रजातंत्र की और परिभाषा नहीं की जा सकती, साथ ही 'प्रजातंत्र' शब्द का इससे संकुचित प्रयोग भी नहीं हो सकता, यदि हम 'सरकार' का तात्पर्य केवल राज्य के प्रशासनिक कार्यों से लगायें। प्रजातंत्र को इसका वास्तविक अर्थ और महत्व प्रदान करने के लिए 'सरकार' शब्द का प्रयोग हमारे सभी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कार्यकलापों में व्यापक परिप्रेक्ष्य में करना होगा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रजातंत्र न केवल शासन का एक रूप है, वरन् यह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक पहलुओं को लिए हुए जीवन का एक तरीका है। यह न केवल सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं के बाह्य-ढाँचे से संबंधित है वरन् यह समाज विशेष के सदस्यों के व्यक्तित्व आचरणों से भी सक्रिय रूप से संबंधित है। सिद्धांत में प्रजातंत्र एक अत्यंत व्यापक सिद्धांत है जो जीवन के विभिन्न पहलुओं का आलिंगन करता है और

समस्त मानवीय संबंधों को प्रशासित भी करता है। यह तब तक सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता जब तक कि यह संपूर्ण समाज के जीवन को न आच्छादित कर ले और समाज के प्रत्येक सदस्य के व्यक्तिगत आचरण को भी नियमित न कर ले। सच्चा प्रजातंत्र इस आदर्श पर स्थित है कि मानव जीवन के पास एक मूल्य है और यह कि उसे केवल राजनीतिक रूप में ही नहीं देखा जा सकता। उन देशों में जहाँ राजनीतिक प्रजातंत्र को औपचारिक रूप से अपनाया गया वहाँ इसके विनाश के कारण अत्यन्त गूढ़ हैं। लेकिन एक कारण के लिए हम लोग निश्चित रूप से कह सकते हैं कि जहाँ भी यह असफल हुआ, संपूर्ण रूप से राजनैतिक कारकों के कारण। यह लोगों के दैनिक जीवन के आचरणों का अभिन्न अंग नहीं बन पाया। प्रजातंत्र के रूप केवल संसदों, चुनावों और राजनीतिक दलों के मध्य संघर्ष तक ही सीमित रहे। जो कुछ भी घटित हो रहा है उससे निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जब तक विचारों और कार्यों की प्रजातांत्रिक आदतें लोगों के जीवन का अभिन्न अंग नहीं बन जातीं तब तक राजनैतिक प्रजातंत्र असुरक्षित है। यह एकान्त में स्थित नहीं रह सकता। यह समस्त सामाजिक संबंधों में प्रजातांत्रिक पद्धतियों की मौजूदगी द्वारा मज़बूत किया जाना चाहिए।

राष्ट्र के रूप में हम एक मुखर व सक्रिय लोकतंत्र को कायम रखने में सफल हुए हैं। यहाँ पर माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) द्वारा की गई परिकल्पना स्मरण योग्य है–

''लोकतंत्र में नागरिकता की परिभाषा में कई बौद्धिक, सामाजिक व नैतिक गुण शामिल होते हैं– एक लोकतांत्रिक नागरिक में सच को झूठ से अलग छाँटने, प्रचार से तथ्य अलग करने, धर्मांधता और पूर्वग्रहों के खतरनाक आकर्षण को अस्वीकार करने की समझ व बौद्धिक क्षमता होनी चाहिए ... वह न तो पुराने को इसलिए नकारे क्योंकि वह पुराना है, न ही न नए को इसलिए स्वीकारे क्योंकि वह नया है। बल्कि उसे निष्पक्ष रूप से दोनों को परखना चाहिए और साहस से उसको नकार देना चाहिए जो न्याय व प्रगति के बलों को अवरुद्ध करता हो ...'' राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005, पृष्ठ संख्या 7–8

प्रजातंत्र के आदर्श

1. प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का आदर किया जाएगा और इसे स्वीकार किया जाएगा कि व्यक्ति उस पृथ्वी से ज़्यादा कीमती है जिस पर वे रहते हैं, उस भोजन तथा कपड़े से ज़्यादा महत्वपूर्ण है जो उसके जीवन को सुरक्षित तथा ऊर्जा प्रदान करते हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व में विश्वास तथा उसके प्रति पवित्र सम्मान प्रजातांत्रिक पद्धति के खम्भे होंगे।
2. सभी व्यक्तियों को उन सभी मामलों में भाग लेने का अधिकार है जो कि उनसे संबंधित हैं। प्रजातंत्र यह अपेक्षा करता है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे अन्य व्यक्ति द्वारा एक सजीव, बुद्धिमान तथा शक्तियुक्त अवयव समझा जाये जिसके पास उन सभी निर्णयों में भाग लेने का अधिकार है जो कि उसे प्रभावित करते हैं।
3. प्रत्येक व्यक्ति के पास भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। उसके पास विवेकपूर्ण सीमा के अंदर उन सभी वस्तुओं तथा विचारों की

आलोचना का अधिकार है जिन्हें कि उसका अहं स्वीकार नहीं करता।

4. स्वतंत्रता और समानता प्रजातंत्र के आधारभूत सिद्धांत हैं। सभी व्यक्तियों को इस संसार की समस्त वस्तुओं को समान रूप से बाँटने का अधिकार है। केवल एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के पास उन पर नियंत्रण का विशेषाधिकार नहीं है।
5. प्रजातंत्र यह भी मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में सोचने के लिए तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करने के लिए उपलब्ध साधनों का इस्तेमाल करने के लिए सक्षम है। प्रजातंत्र पुरुषों तथा स्त्रियों की पूर्ण क्षमताओं में विश्वास रखता है।
6. व्यक्ति के व्यक्तित्व के सम्मान का अर्थ है कि अल्पमतों के हितों की भी सुरक्षा की जाए। एक ऐसे प्रजातंत्र में जहाँ बहुमत की ही आवाज़ सुनी जाती है और अल्पमतों के हितों पर कुठाराघात किया जाता है, वहाँ प्रजातंत्र की खिल्ली उड़ायी जाती है। सच्चा प्रजातंत्र जाति, धर्म तथा रंग के भेदभाव को दूर करता है तथा ऐसा वातावरण तैयार करता है जहाँ जातिगत, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक अल्पमतों को सम्मान दिया जाता है तथा उनके प्रति सहिष्णुता की भावना रखी जाती है।
7. प्रजातंत्र शान्तिपूर्ण उपायों में विश्वास करता है और अपना विश्वास इस धारणा में व्यक्त करता है कि शान्ति की विजय, युद्ध की विजय से ज़्यादा शानदार होती है। शान्ति के तरीके युद्ध के तरीकों से ज़्यादा प्रभावशाली तथा टिकाऊ हुआ करते हैं। प्रजातंत्र मानव जीवन की सुरक्षा तथा उसके अस्तित्व को खतरा पहुँचाने वाली सभी समस्याओं का शान्तिपूर्ण हल निकालता है।

प्रजातंत्र के आदर्शों पर बहस बंद करने के पहले दो बिंदुओं पर विचार कर लेना अत्यंत आवश्यक होगा। सर्वप्रथम्, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता दी गयी है तो उस पर किसी प्रकार का बंधन नहीं होगा। स्वतंत्रता प्रदान करने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम उसका उपयोग तुच्छ स्वार्थों के लिए करें। स्वतंत्रता का अर्थ बंधनों का अभाव नहीं है और यदि व्यक्ति अपने आप पर अंकुश नहीं लगा सकता तो समाज और राज्य को उसके निरंकुश व्यवहारों पर अंकुश लगाना चाहिए यदि उनसे दूसरों के हितों को नुकसान पहुँचता हो। दूसरे, प्रजातंत्र में समानता के सिद्धांत का अर्थ सभी लोगों में अवसरों के समान वितरण से नहीं है। हम सभी जानते हैं कि कोई भी दो व्यक्ति सभी मामलों में समान नहीं हैं, सभी लोग वैयक्तिक रूप से भिन्न हैं, कुछ लोग ज़्यादा सक्षम हैं, और कुछ लोग कम, सभी लोग वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण अवसरों की समानता से समान रूप से लाभान्वित नहीं हो सकते। कुछ लोग शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग हैं, जबकि दूसरे कई अन्य क्षेत्रों में अधिक योग्य हैं। अवसरों की समानता का आशय ऐसे भौतिक और सांस्कृतिक वातावरण के निर्माण से है जो समस्त व्यक्तियों के व्यक्तित्व का विकास उनकी शक्तियों और संभावनाओं के अनुरूप अधिक-से-अधिक कर सकें।

प्रजातंत्र और शिक्षा

शिक्षा प्रजातंत्र का हथियार है और जब तक सबके लिए उत्तम शिक्षा की व्यवस्था नहीं होती,

प्रजातंत्र सफल नहीं हो सकता। केवल प्रबुद्ध नागरिक समुदाय प्रजातंत्र की सहायता और सुरक्षा कर सकता है। केवल अकेले शिक्षा ही व्यक्तियों को उनके कर्त्तव्य और ज़िम्मेदारियों को समझने के योग्य बना सकती है और उन्हें प्रजातांत्रिक समाज-व्यवस्था के उपयोगी सदस्य के रूप में कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकती है। प्रजातंत्र में शिक्षण संस्थाओं के पास अनेक ज़िम्मेदारियाँ हैं और केवल सुचारू रूप से संगठित शैक्षिक कार्यक्रम के द्वारा ही प्रजातांत्रिक आदर्शों की प्राप्ति संभव है। प्रजातंत्र में शिक्षा से तात्पर्य केवल किताबी ज्ञान प्रदान करना ही नहीं है अपितु प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण से शिक्षा का अत्यंत व्यापक अर्थ है और इसका संबंध व्यक्ति के सर्वतोन्मुखी विकास से है जिससे कि वह अपनी शक्तियों और संभावनाओं का अपने विकास के लिए पूर्ण रूप से उपयोग कर सके और साथ-ही-साथ समाज की उन्नति में भी योगदान कर सके।

1. शैक्षिक आदर्श

'योग्य नागरिकता' शब्द के अलावा अन्य कोई शब्द प्रजातांत्रिक शिक्षा के आदर्श को नहीं अभिव्यक्त कर सकता जिसका अर्थ है कि व्यक्ति अपने तथा अपनी पीढ़ी के प्रति कल्याण की भावना से कार्य करे। जब कोई व्यक्ति अपनी शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक क्षमताओं का उपयोग अपने तथा समाज के विकास के लिए करे तब हम उसे योग्य नागरिक कहेंगे। शिक्षा के इस आदर्श को समझने के लिए हमें शिक्षा को अत्यंत व्यापक दृष्टिकोण से देखना होगा। केवल किताबी ज्ञान किसी भी व्यक्ति को प्रजातांत्रिक समाज में उसकी ज़िम्मेदारी निभाने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। गौरवशाली जिंदगी कैसे व्यतीत की जाए तथा दूसरों के साथ मिल-जुलकर कैसे रहा जाए? यह किताबें नहीं बतायेंगी। शिक्षा तब तक शिक्षा कहलाने की अधिकारी नहीं हो सकती जब तक कि वह अपने अंदर एक-दूसरे के साथ गौरवशाली तथा प्रभावकारी ढंग से रहने के गुणों का समावेश नहीं कर लेती। इस उद्देश्य के लिए जिन गुणों का विकास किया जाना आवश्यक है वे हैं– अनुशासन, सहयोग, सामाजिक जागरूकता तथा सहिष्णुता। प्रजातांत्रिक राज्य में हमारी संपूर्ण शैक्षिक अवधारणा को एक नयी दिशा दी जानी चाहिए और हमें शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को व्यापक दृष्टिकोण से देखना चाहिए।

अगर हमें लोकतंत्र को शासन चलाने की प्रणाली मात्र नहीं बल्कि एक जीवन शैली के रूप में पोषित करना है तो, संविधान में निहित मूल्य सर्वोपरि महत्त्व के हो जाते हैं।

- भारत का संविधान सभी नागरिकों को स्थिति व अवसर की समानता का आश्वासन देता है। शिक्षा की परिधि से बच्चों की विशाल संख्या का बाहर होना और निजी व सरकारी स्कूली व्यवस्था से पैदा हुई विषमताएँ, समानताओं के लिए किए गए प्रयासों को बाधित करती हैं। शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन व समतावादी सामाजिक व्यवस्था के माध्यम के रूप में कार्य करना चाहिए।
- सभी को सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय उपलब्ध कराना लोकतंत्र को दृढ़ करने के लिए अनिवार्य है।
- कार्य व विचारों की स्वतंत्रता हमारे संविधान में निहित एक मूलभूत मूल्य है। लोकतंत्र में ऐसे नागरिकों की आवश्यकता होती है और

वह ऐसे नागरिक रचता है जो स्वतंत्र रूप से अपने लिए निर्धारित उद्देश्यों को पाने के लिए कार्य करें और दूसरों के इस अधिकार का आदर करें।

- एक नागरिक के लिए यह आवश्यक है कि समाज में भाईचारे की भावना प्रोत्साहित करने के लिए वह समानता, न्याय व स्वतंत्रता के सिद्धांतों को आत्मसात करें।
- भारत एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य है, इसका अर्थ है कि सभी आस्थाओं का आदर किया जाता है, लेकिन साथ ही भारतीय गणराज्य किसी आस्था विशेष को अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ नहीं मानता। आज बच्चों में सभी लोगों के प्रति चाहे किसी भी धर्म के हों, समान आदरभाव पोषित करने की ज़रूरत है। (*राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005, पृष्ठ संख्या-8)*

2. पाठयक्रम तथा निर्देशन की विधियाँ

शिक्षा के प्रजातांत्रिक आदर्शों की प्राप्ति के लिए अब हमें अपना ध्यान पाठ्यक्रम-योजना तथा निर्देशन की नयी विधियों पर लगाना होगा। ऐसा कहा जा सकता है कि प्रजातांत्रिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हमें पाठ्यक्रम के प्रति अपनी पुरानी अवधारणाओं को बदलकर शिक्षण की प्रगतिशील विधियों की खोज करनी पड़ेगी। प्रजातंत्र में शिक्षा का कार्य जीवन में समायोजन उत्पन्न करना है। पाठ्यक्रम संगठन के पारंपरिक तरीके व्यक्ति तथा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते।

''भारत विविध संस्कृतियों वाला समाज है जो अनेक प्रादेशिक व स्थानीय संस्कृतियों से मिलकर बना है। लोगों के धार्मिक विश्वास, जीवन शैली व सामाजिक संबंधों की समझ एक-दूसरे से बहुत अलग है। सभी समुदायों को सह-अस्तित्व व समान रूप से समृद्ध होने का अधिकार है और शिक्षा व्यवस्था को भी हमारे समाज में निहित इस सांस्कृतिक विविधता के अनुरूप होना चाहिए। अपनी सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय अस्मिता को सुदृढ़ करने के लिए पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए कि वह युवा पीढ़ी को इसके लिए सक्षम बना सके कि वह नयी प्राथमिकताओं व बदलते सामाजिक संदर्भ में उभरते दृष्टिकोणों के परिप्रेक्ष्य में अतीत का पुनर्मूल्यांकन व पुनर्व्याख्या कर पाए। मानवविकास की समझ के आधार पर यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि हमारे देश में विविधता का अस्तित्व दरअसल हमारे यहाँ की उस विशिष्ट चेतना का फल है जिसने फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर दिया। इस भूमि की सांस्कृतिक विविधता को हमारी विशिष्टता की तरह संजोए रखना चाहिए। इसे केवल सहिष्णुता का परिणाम नहीं समझा जाना चाहिए। इस संदर्भ में युवा पीढ़ी में अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति एक नागरिक चेतना व संविधान में निहित सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता की रचना पूर्वापेक्षित है।'' (*राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005, पृष्ठ संख्या 8-9)*

3. प्रजातंत्र में विद्यालय

प्रजातंत्रीय व्यवस्था में विद्यालयों के पास अत्यंत महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारियाँ हैं। समाज शिक्षण संस्थाओं को अपने सदस्यों में उन आदर्शों तथा दृष्टिकोणों को विकसित करने के लिए नियुक्त करता है जो उन्हें समाज के जीवन तथा इसके विभिन्न

क्रियाकलापों में सक्रिय रूप से भाग लेने के योग्य बनाते हैं। अत: किसी भी समाज में शिक्षण संस्थाओं का कार्य नवयुवकों को आदर्श नागरिकता की शिक्षा देना है तथा उनमें उन कुशलताओं तथा दृष्टिकोणों का विकास करना है जिनके द्वारा वे समाज के विकास में योगदान कर सकें। विद्यालय एक सामाजिक संस्था है और प्रजातंत्र में यह विद्यालयों की ही ज़िम्मेदारी है कि वे विद्यार्थियों को सामाजिक प्रक्रिया के लिए तैयार करें।

केन्डेल, 'विद्यालयों को सांस्कृतिक विरासत के हस्तान्तरण करने वाले अभिकरण के रूप में स्वीकार करता है।'

विद्यालय समाज में विद्यमान संस्कृति के आवश्यक तत्वों को आगे बढ़ाने के लिए स्थापित किये जाते हैं। हेराल्ड के अनुसार विद्यालय जीवन का एक उद्यम है - सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों।

विद्यालय, जैसे कि हम प्रजातंत्र में अपेक्षा करते हैं, बड़े समाजों के आदर्शों और व्यवहारों को प्राप्त करने के लिए लघु समाज होंगे। वे बड़े समुदायों में छोटे समुदाय होंगे जो युवकों को उदार शिक्षा देने के साथ-साथ सामुदायिक जीवन का भी ज्ञान प्रदान करेंगे और उन्हें उन गुणों, कुशलताओं और दृष्टिकोणों को प्राप्त करने में सहायता करेंगे जो उन्हें समाज का उपयोगी और सक्रिय सदस्य बना सके। नि:सन्देह विद्यालय एक समुदाय होगा, लेकिन बड़े समुदाय के अंदर एक छोटा समुदाय और इसकी सफलता और जीवंतता बड़े समुदाय और इसमें निरंतर स्वस्थ अन्त:क्रिया पर निर्भर होगी। हम लोगों को देखना यह चाहिए कि दोनों तरफ से आदान-प्रदान हो जिससे कि वे समस्याएँ जो गृह और सामुदायिक जीवन में उत्पन्न होती हैं और वे व्यावहारिक अनुभव जो वहाँ प्राप्त किये जाते हैं, उन्हें विद्यालय में लाया जा सके और उनका निदान भी ढूँढ़ा जा सके।

संक्षेप में, **ब्रेन्डफोर्ड** के शब्दों में, 'विद्यालय को विश्व का एक आदर्श प्रतिरूप होना चाहिए, न केवल सामान्य समस्याओं के विश्व का अपितु संपूर्ण मानवता का, शरीर और आत्मा का, अतीत, वर्तमान और भविष्य का।'

4. स्वतंत्रता और अनुशासन

स्वतंत्रता और अनुशासन में संतुलन अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता का आशय व्यक्ति की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के प्रति सम्मान से है, जबकि अनुशासन का तात्पर्य सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति सम्मान से है। एक अर्थ में हमारी संपूर्ण शिक्षा, स्वतंत्रता और अनुशासन को उनके व्यापक अर्थों में लेती है। यह अपनी आवश्यकताओं का भी ध्यान रखती है तथा आशा करती है कि व्यक्ति उन्हें पूरा करे। स्वतंत्रता इसीलिए बंधनों का अभाव नहीं है और अनुशासन निरंकुश तानाशाही नहीं। यदि स्वतंत्रता को अकेले छोड़ दिया जाए तो यह अराजकता में परिवर्तित हो जाएगी और अनुशासन निरंकुशतावाद में। प्रजातंत्र अपने को दोनों के मध्य रखता है और मानता है कि स्वतंत्रता पर राज्य और समाज दोनों का नियंत्रण हो तथा सत्ता का प्रयोग व्यक्ति के व्यक्तित्व का उचित ध्यान रखकर किया जाए। स्वतंत्रता और समानता के मध्य यह संतुलन उन्हें उनका उचित महत्त्व प्रदान करता है और व्यक्ति और समूह के जीवन में उचित सामंजस्य बनाए रखता है।

प्रजातंत्र और शिक्षक – विभिन्न दार्शनिक विचार

1. **आदर्शवाद** – आदर्शवाद के अनुसार शिक्षक का स्थान शिक्षण-प्रक्रिया में सर्वोपरि है। शिक्षण-प्रक्रिया यान्त्रिक नहीं होती। इसमें एक व्यक्तित्व का दूसरे पर प्रभाव पड़ता हैं। बालक जो अन्ततः व्यक्ति है न कि शरीर, उसका विकास प्रभावशाली व्यक्तित्त्व द्वारा ही संभव है, अतः शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए। जन्म के समय बालक में शक्तियाँ सुषुप्त रहती हैं। शिक्षक का कार्य इन सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत करना है। भारतीय आदर्शवाद में भी शिक्षक को त्रिदेव की संज्ञा दी गई है- यहाँ त्रिदेव से तात्पर्य है –''गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः पिता गुरुः माता, गुरुदेव परः शिवः।।'' गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता। सच्चा गुरु मिलना कठिन होता है, किंतु गुरु मिलने पर शिष्य के अज्ञान का नाश हो जाता है।
2. **प्रकृतिवाद** – प्रकृतिवादी शिक्षा में बालक का सर्वप्रथम स्थान है। इस शिक्षा-व्यवस्था में अध्यापक का स्थान गौण है। प्रकृतिवाद के अनुसार, अध्यापक का कार्य पढ़ाना, सिखाना या सूचनाएँ देना नहीं है, उसका कार्य आदर्शों की व्याख्या नहीं है। उसे छात्र के जीवन को मोड़ने का भी अधिकार नहीं हैं। उसका कार्य तो केवल यह है कि वह बालक के स्वतः विकास में सहायक हो। उसका बालक के विकास में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है।

   प्रकृतिवादी का यह विश्वास है कि बालक की शिक्षा में अध्यापक का जितना ही कम हस्तक्षेप होगा, उतना ही अच्छा है। उसका कार्य बालक की नैसर्गिक क्षमताओं के विकास के लिए उपर्युक्त वातावरण का सृजन कर देना मात्र है। जिस प्रकार एक माली बगीचे में यह देखता रहता है कि पौधों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण है या नहीं, उसी प्रकार शिक्षक भी वातावरण की उपयुक्तता पर दृष्टि रखता है। किंतु जिस प्रकार माली पौधों के विकास की गति अवरुद्ध नहीं करता, उसी प्रकार शिक्षक को भी बालक के स्वतः विकास की गति को अवरुद्ध नहीं करना चाहिए।

   संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रकृतिवाद में अध्यापक का स्थान गौरवपूर्ण नहीं है। वह एक बाधा के रूप में एवं अनिवार्य अभद्र के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।
3. **प्रयोजनवाद** – प्रयोजनवादी शिक्षक का दृष्टिकोण जनतंत्रात्मक होता हैं। वह छात्रों के मन पर ज़बरदस्ती कोई चीज़ लादता नहीं। छात्रों का विकास करने के लिए वह उन्हें अधिकाधिक स्वतंत्रता प्रदान करता है। कार्य में यदि छात्रों को स्वतंत्रता मिल जाती है तो अपनी प्रथा का स्वतंत्र रूप से उपयोग कर सकते हैं। इस संबंध में **डीवी** महोदय कहते हैं कि 'सबसे महत्वपूर्ण स्वतंत्रता बुद्धि की स्वतंत्रता है अर्थात् निरीक्षण एवं निर्णय करने में स्वतंत्रता होनी चाहिए।'

   इस प्रकार हम देख रहे हैं कि प्रयोजनवादी शिक्षक छात्र का पथ-प्रदर्शक है और वह एक सच्चे मित्र की भांति छात्र को मार्ग दिखाता रहता है।
4. **यथार्थवाद** – यथार्थवादी अध्यापक का विज्ञान में अटूट विश्वास होता है। वह स्वयं

वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाता है और चाहता है कि उसके छात्र भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाएँ। किसी उपयुक्त क्षेत्र में यथार्थवादी अध्यापक स्वयं कुछ करता है। अन्वेषण करने में वह प्रायः अनेक विचलनों को नियत्रिंत करके केवल एक विचलन को परिवर्तित करता है और तब उस परिवर्तन द्वारा उत्पन्न प्रभाव का मापन करता है। यथार्थवादी यह विश्वास करता है कि वह विश्व के सभी तत्वों को जान नहीं सकता, अतः उसे किसी वस्तु का ही ज्ञान करना होता है। इसीलिए वह भिन्नता की विधि अपनाता है और किसी एक विचलन का ही प्रभाव जानने का प्रयत्न करता है। किसी परिस्थिति में केवल एक तत्व का परिवर्तन करके वह इस परिवर्तन का परिणाम देखता है। वह सहसंबंध गुणांक द्वारा यह जानना चाहता है कि एक कारण का दूसरे कारण से या एक वस्तु का दूसरी वस्तु से क्या संबंध है। वैज्ञानिक विधि द्वारा अन्वेषण किए गए ज्ञान को यथार्थवादी अध्यापक अपने छात्रों को देना चाहता है।

प्रजातंत्रीय शिक्षा में शिक्षकों की भूमिका

किसी भी समाज में परिवर्तन को समझने के लिए और सामाजिक सामंजस्य तथा समरसता को बढ़ाने में अध्यापकों ने सदा ही योगदान दिया है। सदियों से अध्यापक भावी समाज के निर्माण में अपना योगदान करते आए हैं। मानव विकास के इतिहास, उसकी प्रगति के विभिन्न सोपान अध्यापकों के द्वारा ही विकसित और निर्मित होते रहे हैं। हमारे देश में अध्यापकों का स्थान बहुत ही ऊँचा रहा है या यों कहें कि सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था में सर्वोपरि रहा है। हमारे प्राचीन ग्रंथ और उनमें निहित चिंतन तथा ज्ञान के भंडार अध्यापकों के योगदान, उनके त्याग, ज्ञानार्जन के लिए की गई तपस्या और मानव हित के लिए किए गए उनके प्रयत्नों के ही परिणाम हैं। अपने विद्यार्थियों को उन्नति की ओर अग्रसर करना, उनकी प्रगति से संवेदनात्मक स्तर पर जुड़ना और अधिक ज्ञान प्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्न करते रहना भारतीय शिक्षा परंपरा का एक अत्यंत सुदृढ़ पक्ष रहा है। भारत में गुरुकुलों और आश्रमों की परंपरा अत्यंत उच्च स्तर तक पहुँची और यही सर्वोत्कृष्ट ज्ञानार्जन के केंद्र बने। बहुधा लोग इन स्थानों पर अध्ययन के लिए एकत्र होते थे। मानव सभ्यता के विकास में भारत का योगदान अनेक क्षेत्रों में अत्यंत उच्च स्तर तक हज़ारों वर्षों पहले ही पहुँच गया था। विज्ञान, गणित, रसायनशास्त्र, आयुर्वेद, जहाजरानी, योग इत्यादि क्षेत्रों में हमारी महान उपलब्धियों के जनक इस देश के कर्मठ अध्यापक ही रहे हैं।

बीसवीं शताब्दी में उपनिवेशवाद का अंत हुआ और मानव चिंतन में जो नए आयाम निकले उनमें सबसे महत्वपूर्ण प्रारंभिक शिक्षा का हर व्यक्ति तक पहुँचना विश्व स्तर पर स्वीकृत हुआ। आज के समय में यह चुनौती भारत के सामने भी खड़ी है। हमारे साधन सीमित हैं और उन सीमित साधनों के रहते हुए भी शिक्षा को सर्व सुलभ बनाना है, उसकी गुणवत्ता को बढ़ाना है और उसकी उपयोगिता द्वारा हर स्तर पर उसकी स्वीकार्यता को भी आगे ले जाना है। इस कार्य को करने का बीड़ा भी इस देश के अध्यापकों के समक्ष रखा गया है। अपने कर्त्तव्य का वे उसी कर्मठता से आज भी

पालन कर रहे हैं जिसकी विरासत उन्हें हज़ारों सालों से मिली हुई है।

विश्व के धनाढ्य देशों के लोग जो भारत की स्थितियों से परिचित हैं, आश्चर्यचकित होकर यह प्रश्न पूछ रहे हैं कि भारतीय विद्यार्थी आज विश्व स्तर पर सुविधा संपन्न देशों और स्कूलों के विद्यार्थियों के साथ कैसे बराबरी का कार्य करने की क्षमता रखते हैं, और किस प्रकार वे सभी से आगे निकल जाते हैं। उदाहरण के लिए संचार तकनीकी और डॉक्टरी अध्ययन के क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ भारतीय विद्यार्थियों का लोहा सारा विश्व मानता है। अध्यापकों के सामने जो नई चुनौतियाँ आती रहती हैं उनके परिणाम आज अत्यंत अधिक बढ़ गए हैं। आज कहा जाता है कि सारा विश्व कक्षा के अंदर सिमट गया है। संचार तकनीकी ने इसे संभव बनाया है। आज सूचना अधिक मात्रा में उपलब्ध है और आवश्यकता यह है कि जो नए परिवर्तन द्रुत गति के साथ हो रहे हैं उन्हें समझा जाए। सूचनाओं के क्षेत्रों में जो बढ़ोतरी हो रही है, उसमें से उपयोगी को निकालने का कौशल सीखा जाए और शिक्षा एक ज्ञान-समाज की ओर ले जाने के लिए हर विद्यार्थी को प्रेरित कर सके। अपने आप में यह एक बहुत बड़ी चुनौती है। इसका सामना करने के लिए हमारे अध्यापकों को स्वाध्याय और स्व-निर्देशित अध्ययन को जीवन का अंग बनाना होगा। यहाँ पर मैं भी यह कहना चाहूँगा कि भारतीय परंपरा में आचार्य और अध्यापक वही होता है जो सतत् अध्ययन करता रहता है और अपने आचरण से नई पीढ़ी के सामने ही नहीं बल्कि समाज के सामने स्वीकार्य आचरण प्रस्तुत करता है।

आचार्य केवल स्वयं, अनुकरणीय आचरण करें और शिष्य उसका अनुसरण करें, इतना ही पूर्ण रूप से आचार्य शब्द की व्याख्या नहीं करता है। आचार्य स्वयं जैसा आचरण करता है वैसा ही दूसरों से भी कराता है। स्वयं लगातार पढ़ता रहता है और दूसरों को भी पढ़ने को प्रेरित करता है और उनसे अपनी ही भांति पढ़वाता है। आज के संदर्भ में शिक्षाशास्त्री बहुत कहते हैं कि पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया 'पार्टनरशिप बेस्ट' यानी शिक्षक-विद्यार्थी की भागीदारी की होनी चाहिए। समानता स्पष्ट है। अध्यापक भी तैयारी करें, विद्यार्थी भी करें फिर दोनों साथ-साथ मिलकर सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाएँ। प्रश्न-परिप्रश्न इस प्रक्रिया को गहन बनाते हैं और सीखने वाले के क्षितिज को विस्तार देते हैं। अब यदि शिक्षक का अपना अध्ययन और अनुशीलन का क्षेत्र सीमित होगा तो वह विद्यार्थी का क्षितिज कैसे बढ़ा पाएगा? ज्ञान के अथाह सागर में से लगातार कुछ प्राप्त करते रहने का एक ही उपाय है-स्वाध्याय, चिंतन, मनन, उपयोग जो कुछ मिले उसे और परिष्कृत करते रहने की इच्छा। यह इच्छा धीरे-धीरे अपने आप ही बढ़ती जाती है और खोजने वाला असीम आनंद और उपलब्धि का सुख पाने लगता है। फिर जब वह इसे अपने शिष्यों के साथ बाँटता है तो यह अत्यंत आनंद बोध की स्थिति होती है जिसकी उपयोगिता असीम होती है।

इसी प्रकार की सुदृढ़ परंपराओं से अत्यंत ओजस्वी, गहन तथा शास्वत सत्य को मुखरित करने वाला ज्ञान भंडार भारत के प्राचीन ग्रंथों में समाहित है और इसे समझने वाले इसकी गहनता को और अधिक पहचानने और जानने का प्रयास

करते हैं। 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' इसी प्रक्रिया की वैज्ञानिकता को परख कर कहा गया है – शुद्ध ज्ञान सत्य का प्रतिरूप है। वह आशंकाओं का निवारण करता है। इसे पाने में ज्ञानवान तथा लगनशील अध्यापक की सहायता की आवश्यकता होती है। शुद्ध ज्ञान को और शुद्ध तथा समृद्ध बनाने में अध्यापक ही प्रेरणा का स्रोत होता है और साथी-शोधक भी होता है। सदियों से अध्यापन की योग्यता के लिए तीन गुण आवश्यक माने जाते रहे हैं। सबसे प्रथम है ज्ञान में अभिरुचि। सीखता रहे और उसमें उपलब्धि तथा आनंद का अनुभव करे अन्यथा शृंखला स्वयं ही टूट जाएगी, जितना सीखा है उससे संतुष्ट न होकर और सीखने की आवश्यकता उसके सामने लगातार उभरती रहती है। दूसरा महत्वपूर्ण आयाम है चरित्र निर्माण के प्रति समर्पित भाव से प्रयत्नशील होना। ऐसा वही कर सकेगा जो स्वयं संयत जीवन जी रहा होगा, जिसे अपने चरित्र पर विश्वास होगा और जिसने ऐसा ही विश्वास औरों से भी अर्जित कर लिया होगा। ऐसा अध्यापक ही नई पीढ़ी के चरित्र निर्माण में अपना सार्थक और सफल योगदान कर सकेगा। इसी से उसके व्यक्तित्त्व का तीसरा महत्वपूर्ण आयाम उभरता है – अध्यापक का विनीत होना। अपने ज्ञान पर उसे कभी घमंड नहीं होता है। आज भी अध्यापन के कार्य में लगे लगभग 50 लाख अध्यापक स्कूल शिक्षा में इन्हीं भावनाओं, विचारों तथा परंपराओं से प्रेरणा लेकर विषम परिस्थितियों में भी अपना कार्य निष्पादन कर रहे हैं।

निष्कर्ष

प्रजातंत्रीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षकों की भूमिका अवश्य ही दिखाई देती है। जैसा कि कहा गया है कि बालक देश के भविष्य हैं। बालक का सर्वांगीण विकास करना शिक्षकों का ही दायित्त्व है। जिसमें वे विभिन्न मूल्यों की शिक्षा अपने व्यक्तित्त्व के आधार पर देते हैं। इसीलिए यह कहा जाता है कि शिक्षकों का प्रजातंत्र के प्रति विश्वास होना चाहिए तभी वे छात्रों को प्रजातंत्रीय मूल्यों के आधार पर प्रशिक्षित कर सकेंगे।

संदर्भ

ओ. के., लक्ष्मीलाल. 2004. *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि.* पंचम संस्करण, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी.

एन.सी.ई.आर.टी. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा*-2005. नयी दिल्ली.

पाण्डेय, रामशकल. 2007. *शिक्षा के दार्शनिक सिद्धांत.* प्रथम संस्करण. श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.

_____ 2010. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*, पंचम संस्करण, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.

भारत सरकार. 1985. *शिक्षा की चुनौतियाँ.* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली.

लाल, रमन बिहारी. 2010. *शिक्षा का दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार.* आर. लाल बुक डिपो, मेरठ.

लाल एवं पलोड़, 2011. *शैक्षिक चिंतन एवं प्रयोग.* उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, संशोधित संस्करण, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ.

शुक्ला, सी.एस. 2009. *शिक्षा का दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार.* प्रथम संस्करण, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद.

सक्सेना, सरोज. 2009. *शिक्षा का दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार.* प्रथम संस्करण, साहित्य प्रकाशन, आगरा.